गुणानुरक्तामनुरक्तसाधनः कुलाभिमानी कुलजां नराधिपः।

परैस्त्वदन्यः क इवापहारयेन्मनोरमामात्यवधूमिव श्रियम् ॥३१॥

अन्वय-

अनुरक्तसाधनः कुलाभिमानी त्वदन्यः कः इव नराधिपः गुणानुरक्ताम् कुलजाम् मनोरमाम् आत्मवधूम् इव श्रियम् परैः अपहारयेत् ॥३१॥

अर्थ-

सब प्रकार के साधनों से युक्त एवं अपने उच्च कुल का अभिमान करनेवाला तुम्हारे सिवा दूसरा कौन ऐसा राजा होगा, जो सन्धि आदि (सौन्दर्य आदि) राजोचित गुणों से (स्त्रियोचित गुणों से) अनुरक्त, वंश परम्परा द्वारा प्राप्त (उच्च कुलोत्पन्न) मन को लुभानेवाली अपनी पत्नी की भांति राज्यलक्ष्मी को दूसरों से अपहृत करायेगा ॥३१॥

टिप्पणी-

स्त्री के अपहरण के समान ही राज्यलक्ष्मी का अपहरण भी मानहानिकारक है। तुम्हारे समान निर्लज्ज ऐसा कोई दूसरा राजा मेरी दृष्टि मे नहीं है, जो अपने देखते हुए अपनी पत्नी की भांति अपनी राज्यलक्ष्मी को अपहरण करने दे रहा है । यहाँ मालोपमा अलङ्कार है।

भवन्तमेतर्हि मनस्विगर्हिते विवर्तमानं नरदेव ! वर्त्मनि।

कथं न मन्युर्ज्वलयत्युदीरित: शमीतरुं शुष्कमिवाग्निरुच्छिख ॥३२॥

अन्वयः-

नरदेव! एतर्हि मनस्विगर्हिते वर्त्मनि विवर्तमानम् भवन्तम् उदीरित: मन्यु: शुष्कम् शमीतरुं उच्छिख अग्नि इव कथं न ज्वलयति।।३२।।

अर्थ-

हे राजन् ! ऐसा विपत्ति का समय आ जाने पर भी और वीर पुरुषों के लिए निन्दनीय मार्ग पर खड़े हुए आप को (मेरे द्वारा) बढ़ाया हुआ क्रोध, सूखे हुए शमी वृक्ष को अग्नि को भांति क्यों नहीं जला रहा है ॥३२॥

टिप्पणी-

आप को तो ऐसी विपदावस्था में उदीप्त क्रोध से जल उठना चाहिए था। शत्रु द्वारा उपस्थित की गई ऐसी दुर्दशाजनक परिस्थिति में भी आप कायरों की भांति शान्तचित्त हैं, इसका मुझे आश्चर्य हो रहा है। यहाँ उपमा अलङ्कार है।